ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2017; 3(11): 527-531
www.allresearchjournal.com
Received: 12-09-2017
Accepted: 21-10-2017

डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सर्वजीत दुबे
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत, अकादमिक प्रभारी, गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा, राजस्थान, भारत

संस्कृत ग्रंथों में अहिंसा

डॉ. सर्वजीत दुबे

सारांश
अहिंसा मानवीय संस्कृति का शिखर है। इस परम ऊंचाई को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब व्यक्ति को अनुभव हो जाए कि हम सभी दो नहीं हैं, एक ही सत्य की विभिन्न अभिव्यक्तियां हैं। अर्थात् अद्वैत का अनुभव अहिंसा की मंजिल तक पहुंचा देता है। संस्कृत के ग्रंथों में यह अद्वैत की भावना अनेक रूपों में प्रकट हुई हैं। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'ईशावास्यमिदं सर्वं' और 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति' जैसे अनेक महावाक्य "अहिंसा परमो धर्मः" की स्थापना करते हैं। हम सभी आत्मा जब एक ही परमात्मा के अंश हैं तो हमारा जीवन परस्पर निर्भर है। एक का दुख दूसरे का दुख है और एक का सुख दूसरे का सुख हो जाता है।अतः ऋषि प्रार्थना करते हैं - 'मा कश्चिद् दुखभाग भवेत्', 'सर्वे भवंतु सुखिनः'। अहिंसा को जीवन में साधना पड़ता है तब इसकी उपलब्धि होती है। इसके लिए संस्कृत ग्रंथों में बताए गए "यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि की योग-साधना से गुजरना पड़ता है। तब व्यक्ति अनुभव करता है कि "अहिंसा परमं सुखम्"।

कूट शब्दः अद्वैत, भस्मासुर, परस्परतंत्रता, विषयासक्तम्, निर्विषयम्, अध्यात्म-विद्या, आवेशजन्य-तनाव, अवसादजन्य-तनाव।

प्रस्तावना
महात्मा गांधी के जन्म दिवस 2 अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्र संघ ने 'विश्व अहिंसा दिवस' के रूप में मनाने का निर्णय लिया। देर से ही सही लेकिन इस शुभ निर्णय से एक बात स्पष्ट हो गई कि आज के विज्ञान प्रधान युग में हिंसा से घिरा मनुष्य इतना परिपक्व हो गया है कि उसे अध्यात्मपरक व्यक्ति की महत्ता का पता चला। इसके बाद उसे अध्यात्मपरक विद्यासंपन्न संस्कृत भाषा का भी आज न कल महत्त्व पता चल ही जाएगा। क्योंकि मोहन को महात्मा बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अहिंसा के सिद्धांत में उनकी दृढ़ आस्था ने निभाई। गांधी स्वयं मानते थे कि सत्याग्रह संबंधी विचारधारा का मूल स्रोत उनका अहिंसा का सिद्धांत है। इससे भी ज्यादा गहरी बात यह है कि उनके सत्य और अहिंसा का मूल स्रोत वैदिक दर्शन है। यजुर्वेद का वाक्य 'ईशावास्यमिदं सर्वं'[1] राष्ट्रपिता के धार्मिक विचारों का मूल आधार है। जब प्रत्येक आत्मा में उस परमात्मा का अंश है तो असत्य के मार्ग पर गए हुए व्यक्ति को सत्य के आग्रह द्वारा सही मार्ग पर लाया जा सकता है। और सत्याग्रह के लिए सही मार्ग अहिंसा ही हो सकता है। अहिंसा की व्यक्तिगत धारणा और साधना को गांधी ने राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में प्रयोग कर भारतीय आंदोलन की दशा और दिशा बदल दी।

मानव सभ्यता और संस्कृति का उच्चतम विकास बिंदु है- अहिंसा। हिंसा जीवन यात्रा के साथ जुड़ी हुई है पर वह जीवन के विकास का अंग नहीं है। "मनुष्य और जंगम पशुओं की हिंसा मत करो" ऐसा यजुर्वेद में कहा गया है-

"मां हिंसी: पुरुषं जगत"[2]

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है, इसलिए वह हर क्षेत्र में विकास की यात्रा करता है। सामाजिक स्तर पर अहिंसा एक विकास है और अध्यात्म के स्तर पर तो वह सर्वोच्च विकास है। इसीलिए महाभारत में कहा गया है कि अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम सत्य है क्योंकि उससे धर्म प्रवर्तित होता है -

'अहिंसा परमो धर्म, अहिंसा परम तप:
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्म: प्रवर्तते।'[3]

इसी अहिंसा से शांति स्थापित होती है जो विकास की अनिवार्य शर्त है। दरअसल अहिंसा और शांति को विभक्त नहीं किया जा सकता। अहिंसा शांति है और शांति अहिंसा है। दोनों में तादात्म्य संबंध है। इसीलिए चाणक्य कहते हैं- शांति जैसा तप नहीं है -

'शांति तुल्यं तपो नास्ति'[4]

वैश्वीकरण के आज के जमाने में हिंसा का जैसा तांडव देखने को मिल रहा है, वैसा पहले नहीं था। क्योंकि विज्ञान ने अज्ञानी के हाथ में अब असीमित शक्ति सौंप दी है। पुराणों में एक कथा आती है कि भस्मासुर की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव भगवान ने उसे वरदान मांगने को कहा। भस्मासुर ने कहा कि - मुझे वरदान दीजिए कि 'जिसके भी मस्तक पर हाथ रखूं, वह भस्म हो जाए।' शिवजी ने वरदान दे दिया तो वह उन्हीं के मस्तक पर हाथ रखने को दौड़ा। यह कथा प्रतीकात्मक है,जो आज पुनः दोहराई जा रही है।
अज्ञानी भस्मासुरों के हाथ में विज्ञान की शक्ति आई तो वे (भस्मासुर) विकास की जगह विनाश का खेल दिखा रहे हैं। संस्कृत के कथा साहित्य के नीति श्लोकों में कहा गया है कि-

यौवनं धन-संपत्ति: प्रभुत्वमविवेकिता
एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्।।

अर्थात् युवावस्था, धन, प्रभुता और अविवेक; इन चारों में से एक भी अनर्थ की जड़ है। जब चारों ही एकत्र हो जाए तो फिर क्या कहना!
आज के जमाने में अहिंसा को कायरता बताने का प्रयास किया जा रहा है। लेकिन संस्कृत के ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि अहिंसा को हमारी संस्कृति में सबसे ज्यादा मूल्य दिया गया है, जो कायरों का नहीं, वीरों का आभूषण है-

"एवं सर्वमहिंसायां धर्मार्थमपिधीयते,
अमृत: स नित्यं वसति यो हिंसां न प्रपद्यंते।।"[5]

अर्थात् अहिंसा में संपूर्ण धर्म और अर्थ समाहित है। जो व्यक्ति किसी के प्रति हिंसा नहीं करता, वह जन्म-मरण से मुक्त होकर अमृत-तत्व प्राप्त कर लेता है।

"रुपमव्यंगतामायुर्बुद्धि सत्यम् बलं स्मृतिम्,
प्राप्तुकामैर्नरैर्हिंसा वर्जिता वै महात्मभि:।।"[6]

अर्थात् जो मनुष्य सुंदरता, पुर्वांगता, दीर्घायु, उत्तम बुद्धि, आरोग्य, बल और स्मरणशक्ति प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें हिंसा का सर्वदा के लिए त्याग कर देना चाहिए।

"अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम्
अहिंसा परम मित्रमहिंसा परमं सुखम्।।"[7]

अर्थात् अहिंसा सर्वश्रेष्ठ यज्ञ है, अहिंसा से उत्तम फल प्राप्त होता है।अहिंसा परम मित्र है और सबसे उत्तम सुख है।
विज्ञान के कारण सारा संसार एक दूसरे से जुड़ गया लेकिन यह जुड़ाव बाहर का ही है। अंदर से दूरियां और बढ़ गई हैं, तभी तो हृदय में हिंसा का भाव उठता है।
वस्तुतः समस्या दो प्रकार की होती हैं-भौतिक और मानसिक। भौतिक समस्या का समाधान पदार्थ की

संतुलित व्यवस्था के द्वारा ही हो सकता है लेकिन मानसिक समस्या का समाधान चेतना के स्तर पर ही संभव है। आज संसार विज्ञान के आविष्कारों के कारण पदार्थ की और सुविधाओं की व्यवस्था तो कर लिया; लेकिन फिर भी आदमी अशांत है। यह अशांत आदमी दूसरों को मारकर भी संतुष्ट नहीं है तो वह स्वयं को मारने लगा है। आत्मघाती दस्ते (suicidal squad) क्या इस बात के प्रमाण नहीं है कि व्यक्ति ने विज्ञान को वरदान की जगह अभिशाप बना दिया और उसकी हिंसा ने आत्मघाती स्वरूप धारण कर लिया।

भौतिक समस्या का समाधान अध्यात्म में खोजना और मानसिक समस्या का समाधान पदार्थ में खोजना मानवीय चिंतन की सबसे बड़ी भूल है। इस भूल को हम दोहराते चले जा रहे हैं, इसीलिए समस्या का सही समाधान नहीं हो रहा है।

आज का आदमी विश्वशांति की बात बहुत सोचता है पर इस सच्चाई को विस्मृत कर देता है कि मानसिक शांति के बिना विश्वशांति की कल्पना नहीं की जा सकती। और मानसिक शांति तब तक संभव नहीं जब तक समस्त परिवेश शांतिपूर्ण न हो। इसीलिए तो यजुर्वेद में प्रार्थना की गई है कि स्वर्ग, अंतरिक्ष और पृथ्वी शांतिरूप हो। जल, औषधि, वनस्पति, विश्वदेव, परब्रह्म और सब संसार शांतिरूप हो। जो स्वयं साक्षात् स्वरूपत: शांति है, वह भी मेरे लिए शांति करने वाली हो-

द्यौ: शांतिरन्तरिक्षं शांति:, पृथ्वी: शांतिराप: शांतिरोषधय: शांति:। वनस्पतय: शांतिर्विश्वेदेवा: शांतिर्ब्रह्म शांति: सर्वं शांति: शांतिरेवशांति: सा मा शांतिरेधि।[8]

शांति के लिए 'अमन' शब्द का प्रयोग होता है। संस्कृत के मनीषी जानते थे कि मन का अतिक्रमण करके आत्मा को जाने बिना शांति नहीं उपलब्ध हो सकती। यह आत्मा या चेतना पेड़-पौधों से लेकर पशु-पंक्षियों तक और मानव से लेकर देव तक सब में समान रूप से विद्यमान है। इस आत्मज्ञान के होते ही व्यक्ति में उस धर्म का उदय हो जाता है जो सबके साथ अपने जैसा व्यवहार करता है। महाभारत के अनुशासन पर्व में कहा गया है -

न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मन:
एष संक्षेपतो धर्म: कामादन्य: प्रवर्तते।।[9]

अर्थात जो स्वयं के प्रतिकूल लगे, वैसा आचरण दूसरे के प्रति नहीं करना चाहिए; यही धर्म है।

इस सोच के पीछे संस्कृत के मनीषियों का यह अनुभव है कि स्वतंत्रता और परतंत्रता जैसे शब्द जीवन की वास्तविकता नहीं है। जीवन तो परस्परतंत्रता से चलता है। जीवन का सत्य है कि इस संसार में सब एक दूसरे से जुड़े हैं। अतः जब तक सारे तत्व शांति की स्थिति में न पहुंचे तब तक स्वयं की मानसिक शांति प्राप्त नहीं की जा सकती। बिना मानसिक शांति के विश्वशांति की बात करना बेईमानी है। इस बात को यजुर्वेद में कहा गया है कि- 'युद्ध मनुष्य के मन में उत्पन्न होता है।' अन्यत्र एक श्लोक में कहा गया है कि -

"मन एवं मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयो:
बंधाय विषयासक्तम् मुक्तयै निर्विषयास्मृतम्।।"[10]

अर्थात् मन मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है। विषय से आसक्त होने पर बंधन और निर्विषय होने पर मुक्ति उपलब्ध होती है।

अतएव मन-मस्तिष्क पर ध्यान केंद्रित करने से समस्या का समाधान मिलेगा लेकिन आज युद्ध रोकने के लिए विनाशक हथियार अपरिमित मात्रा में बनाए जा रहे हैं और व्यक्तिगत हिंसा रोकने के लिए कठोर से कठोर कानून निर्मित हो रहे हैं। लेकिन युद्ध और हिंसा कम होने के बजाय बढ़ती ही जा रही हैं। जितने लोग विश्वयुद्ध में मारे गए उससे कहीं ज्यादा लोग व्यक्तिगत हिंसा में मारे जा चुके हैं। अतः अस्त्र-शस्त्रों से या कानूनों से इस समस्या का समाधान ढूंढना उचित नहीं।

आज आवश्यकता है धर्म व अध्यात्मविद्यासंपन्न संस्कृत भाषा की, जो व्यक्ति को प्रार्थना व ध्यान के द्वारा पदार्थ के प्रति अत्यासक्ति से स्वयं के प्रति संतुलित जागरूकता की ओर ले जाए। हिंसा की जड़ में आज की शिक्षा है जो सिर्फ पदार्थ के प्रति चिंतन को बढ़ाती है। इसीलिए पदार्थ पर अधिकार को लेकर ही सब कलह है, चाहे वह पदार्थ भूमि हो या सोने की खानें, तेल के कुएं हो या अन्नक्षेत्र। दरअसल विज्ञान का विकास ही दृष्टि के बाहर की ओर जाने से हुआ। हम बाहर के पदार्थ खोजते-खोजते इतनी दूर निकल गए कि अपनी याद ही न रही। विज्ञान ने हमें पदार्थों से भर दिया किंतु आत्मा से दरिद्र कर दिया। आज संसार सुविधा संपन्न हो गया है, लेकिन सुखी नहीं। कारण है कि हमारी आदत ही बाहर देखने

की पड़ गई है। ऐसे में संस्कृत मनीषियों का मूल प्रश्न 'को अहम्' अर्थात् 'मैं कौन हूं' बहुत महत्वपूर्ण बन गया है। जब खोज में व्यक्ति उतरता है तो पाता है कि वह न तन है,न मन है; वह तो आत्मस्वरूप,चैतन्यस्वरूप साक्षीस्वरूप है। फिर अपेक्षारहित होकर सुख से विचरण करता है -

न त्वं देहो, न ते देहो, भोक्ता कर्त्ता न वा भवान्
चिद्रूपोअसि सदा साक्षी निरपेक्षः सुखं चर।।[11]

यह खोज, यह अंतर्यात्रा का सूत्र आज हमारे जीवन में संतुलन ला सकता है, सुख ला सकता है। जब व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि वह चैतन्य मात्र है, आत्मस्वरूप है तो फिर कण-कण में उसे परमात्मा का दर्शन होने लगता है। "ईशावास्यमिदं सर्वं" का अनुभव होते ही व्यक्ति का मन नहीं रहता; अ-मन व्यक्ति आत्मा में स्थित होकर परम शांति को उपलब्ध होता है।

आधुनिक युग में आचार्य तुलसी और उनके शिष्य महाप्रज्ञ का अहिंसा के प्रचार-प्रसार में अमूल्य योगदान है। आचार्य महाप्रज्ञ ने अपनी पुस्तक "अहिंसा के अछूते पहलू" में इस विषय को बहुत सूक्ष्मता से प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के "अहिंसा और ध्यान" नामक पाठ में उन्होंने स्वीकार किया है कि प्रत्येक सामाजिक प्राणी अहिंसा को पसंद करता है क्योंकि वह शांति चाहता है, शांति के बिना सुख नहीं मिल सकता। लेकिन हिंसा की जड़ें इतनी मजबूत है कि उन्हें सहज ही काटा नहीं जा सकता।..... किंतु उसको काटने का उपाय है।इनमें सबसे बड़ा उपाय है ध्यान।[12]

दरअसल हिंसा की जो जड़ें हैं, उन्हें हम यदि पहचान जाएं तो फिर पोषक तत्वों को काटा जा सकता है। मसलन हिंसा का एक बहुत बड़ा पोषक तत्व है-तनाव। वही आदमी हिंसा करता है जो तनाव से ज्यादा ग्रस्त होता है। तनाव के बिना हिंसा संभव नहीं होती। शिथिलीकरण की दशा में कोई आदमी हिंसा नहीं कर सकता। पहले मांसपेशियों में तनाव होता है फिर मानसिक तनाव होता है और अंत में भावनात्मक तनाव होता है तब आदमी हिंसा पर उतारू हो जाता है।

तनाव दो प्रकार का होता है-आवेशजन्य तनाव और अवसादजन्य तनाव। क्रोध और लोभ का तनाव आवेशजन्य तनाव है। निराशा और निष्क्रियता का तनाव अवसादजन्य तनाव है। दोनों प्रकार के तनाव आदमी को हिंसा की ओर ले जाते हैं। हिरोशिमा-नागासाकी क्रोध के कारण, इराक की हिंसा अमेरिका के तेल कुओं के लोभ के कारण घटित हुआ। निराशा के कारण कई लोग अपराधिक गतिविधियों में संलग्न हो जाते हैं या आत्महत्या कर लेते हैं। इसी प्रकार निष्क्रियता या निठल्लेपन के कारण आज के युवक नशे के आदी हो जाते हैं और अंत में हिंसा के शिकार हो जाते हैं।

तनाव को मिटाने के लिए और व्यक्तित्व को ऊंचाइयों पर ले जाने के लिए पतंजलि के योग सूत्र में यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधि के रूप में जो उपाय बताए गए हैं, वे अत्यंत वैज्ञानिक और प्रमाणिक हैं। आज पूरा संसार अहिंसा की बात करता है लेकिन सारा प्रशिक्षण और प्रयत्न हिंसा का चल रहा है। हथियार चलाने का प्रशिक्षण, युद्ध लड़ने का प्रशिक्षण और यहां तक कि नक्सली और आतंकी बनाने का प्रशिक्षण तो दिया जाता है लेकिन इतने बड़े पैमाने पर योग और ध्यान का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। लेकिन इस दिशा में कुछ सकारात्मक परिवर्तन चल रहे हैं जिसमें **21** जून को "विश्व योग दिवस" घोषित कर योग से लोगों को जोड़ने का सराहनीय कार्य हो रहा है।

मानव के हृदय में घृणा के भाव है, तो प्रेम के भाव भी है: क्रोध के भाव है तो करुणा के भाव भी है; हिंसा के भाव है तो अहिंसा के भाव भी है। नकारात्मक भावनाएं खरपतवार की तरह अपने आप उग जाती हैं, इन्हें बार-बार उखाड़ने पर भी खाद-पानी के बिना ही ये बार-बार बड़ी हो जाती हैं। लेकिन सकारात्मक भावनाएं गुलाब के बीज की तरह सावधानीपूर्वक भूमि में बोनी पड़ती हैं, उनको सतत सुरक्षा देनी पड़ती है और खाद-पानी देना पड़ता है, तब जाकर गुलाब का फूल खिल पाता है। अहिंसा का फूल भी महात्मा जैसे साधक के जीवन में खिल पाता है जिससे सारा राष्ट्र रूपी उपवन ही नहीं संसार रूपी चमन भी सुवासित हो जाता है।

संदर्भ

1. ईशोपनिषद,मंत्र 1
2. यजुर्वेद, 16/3
3. महाभारत, अनुशासन पर्व,115/23
4. चाणक्य नीति
5. महाभारत, शांति पर्व, 245/19

6. महाभारत, अनुशासन पर्व, 115/6
7. महाभारत, अनुशासन पर्व,116/29
8. यजुर्वेद 36/17
9. महाभारत, अनुशासन पर्व, 13/113/69
10. ब्रह्मबिंदूपनिषद 2
11. अष्टावक्र महागीता 15/4
12. अहिंसा के अछूते पहलू, आचार्य महाप्रज्ञ पृष्ठ 19